आदिवासी समाज और शिक्षा

सुनील मिंज

आज भी आदिवासी समुदाय परंपरागत स्वशासन प्रणाली के जरिये संचालित होता है। संताल समुदाय में गांव का प्रमुख मांझी कहलाता है। वह अपने गांव के मूल रैयत की हैसियत से गांव समुदाय का नेतृत्व करता है। मांझी कुल्ही दुडुप यानी ग्राम सभा की बैठक में उसकी अध्यक्षता करता है। वह पंचों से मशविरा कर विवादों पर फैसला सुनाता है। वह ही गांव के अंदर शांति व्यवस्था कायम रखता है वह गांव की सीमा के भीतर की सभी प्राकृतिक तथा सामूहिक संपतियों का उपयोग तथा उसका प्रबंधन सुनिश्चित करता है। वह गांव की जमीन का भी अभिरक्षक होता है। वह गांव के सदस्यों की राय से जरूरतमंद लोगों के लिए भूमि बंदोबश्त करता है। गांव के ससमाजिक जीवन में ग्रामीणों के साथ अभिभावक की तरह बर्ताव करते हैं, नाय के गांव का पुजारी होता है। मांझी उनके साथ मिलकर गांव के सभी धार्मिक तथा सामाजिक उत्सवों के लिए दिन-तारीख निर्धारित करता है। मांझी का पद लाभ का पद नहीं होता, वह सम्मान का पद होता है। इसलिए किसी भी असम्मानजनक तथा जनविरोधी कार्य करने पर उन्हें पदच्यूत किया जा सकता है। वह भले ही पद में बड़ा होता है लेकिन सामान्य सामुदायिक जीवन में वह अपने गांव के आम लोगों के बराबर ही होता है। मांझी की अनुपस्थिति में परानिक कार्यों का संपादन करता है। वह युवाओं के नैतिक आचरण की निगरानी करता है। वह गांव की सभी लड़कियों की शादी-विवाह का ब्योरा रखता है। नायके और परानिक के लिए गांव की ओर से जमीन दी जाती है। इन पारंपरिक अगुआओं का प्राथमिक कार्य है। छोटे विवादों को गांव के स्तर पर निपटारा करना 5-6 गांवों के मांझी को मिलाकर 'मोड़े मांझी' बनता है जो गांव के भीतर आयी कुरीति जैसे एक ही गोत्र में शादी, दो गांवों के बीच का विवाद आदि का निपटारा करते हैं। न्याय व्यवस्था की यह सबसे निचली ईकाइ है। मोड़े मांझी से उपर की न्यायिक व्यवस्था है। 'परगना बैसी' कई गांवों के मांझी को मिलाकर एक परगनैत का चुनाव होता है। यह परगनैत उच्च न्यायालय के न्यायधीश की तरह होता है। इस परगना बैसी में संबंधित गांव के मामले जिसका मोड़े मांझी यानी कि सिविल कोर्ट में निपटारा नहीं हो पाता है, वैसे सारे मामले परगना बैसी में परगनैत की अध्यक्षता में निपटारा किये जाते हैं। सभी परगना के समूह को 'दिसोम बैसी' कहते हैं। इस बैसी में विभिन्न परगना क्षेत्रों से आए तमाम मामले एवं अन्य समस्याओं का निपटारा दिसोम परगना की अध्यक्षता में सभी परगनैत मिलकर करते हैं। यह मुख्यधारा की न्यायिक व्यवस्था सुप्रीम कोर्ट जैसा है। आदिवासियों की अंतिम न्यायिक प्रणाली की सर्वोच्च ईकाइ 'लॉ बीर' इस में न्यायिक प्रणाली की बैठक तबतक चलती रहती है जब तक मामले का निपटारा नहीं हो जाता है। यह जंगल में होता है। जंगली जानवरों का शिकार कर भोजन बनाया जाता है।

उक्त सभी व्यवस्थाएं कमोवेश सभी आदिवासी समुदायों में पायी जाती हैं। सभी समुदायों में गांव के प्रमुख पदधारियों के नाम पड़ा राजा, मांझी परगनैत, मुंड़, मानकी, डोकलोसोहोर अलग-अलग होते हैं। हिन्दू शासन, मुस्लिम शासन, अंग्रेजी शासन और आजादी के बाद की प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद ये आदिवासी व्यवस्थाएं जिंदा हैं। इस अधमरी हो चुकी व्यवस्था को ही खाद-पानी देने के लिए संविधान में 73वां संशोधन किया गया गया अलग-अलग आदिवासी समुदायों में उनके विकास की अलग-अलग मंजिल हैं। कुछ आदिवासी ऐसे हैं जो आज भी सभ्यता की आदिम अवस्था में हैं। जैसे अंडमान के कुछ समुदाय अभी भी आहार संग्रहण की अवस्था में पाये जाते हैं। जैसे झारखंड के बीरहोड़ खड़िया समुदाय की एक शाख सबर खड़िया आज भी पूरी तरह खेतिहर समुदाय नहीं बन पायी है दूसरे सभी आदिवासी समुदाय स्थायी खेतिहर समाज में तब्दील हो चुका है। इनके मुख्यधारा समाज के नजदीक आने से उनके जो शिक्षा के पारंपरिक केंद्र अखड़ा, धुमकुड़िया, पेलो एड़पा, धोटुल, गिती ओड़ा आदि हुआ करते थे, जिनका संचालन गांव के बुजुर्ग व्यक्ति करते थे, जहां खेती के औजार बनाने, ग्राम रक्षा करने, 'मदईत करने, अखड़ा में नाचने से लेकर जिंदगी के हर अध्याय की मौखिक परंपरा में पढ़ाई होती थी, उनका नामोनिशान मिट गया। आज आदिवासियों में बहुत से लोग दो-तीन पीढ़ियों से पढ़ लिख रहे हैं, नौकरियां करते हैं और अब वे शहरी मध्यम वर्ग के हिस्से बन गये हैं। और उनके रिश्ता आज गांवों से टूट रहा है। उनमें भी अब जमीन के प्रति मोह कम दिखने लगे हैं। वे आधुनिक सभ्यता के मूल्य जैसे व्यक्तिवाद, उपभोगतावाद, उन पर प्रभावी हो रहा है। समाज की जगह अब वे परिवार को अधिक महत्व देने लगे हैं। अखड़ा साहित्य, कला और संगीत की सामूहिक अभिव्यक्ति होती थी, सूना पड़ गया है।

आदिवासी एक ओर बनजारे की जिंदगी छोड़ स्थायी कृषि जीवन जी रहे थे। भूम खेती छोड़ गांव बसाकर रहने लगे थे। लेकिन देश में जब से वैश्वीकरण, उदारीकरण, निजीकरण और बाजारीकरण की नीति हावी हुई है तब से आदिवासियों की जिंदगी तबाह हो गयी है। झारखंड में देखिये इसके अलग राज्य का दर्जा मिलते ही यहां सैकड़ों इकरारनामे बड़ी कंपनियों के साथ किये गये, आदिवासियों के जीवन मूल्य पर आधारित आदर्श और बुनियादी समस्याओं से मुक्त राज्य की कल्पना पीछे छूट गयी। आज झारखंड में जिस भारतीय जनता पार्टी का राज है, वह तो झारखंड आंदोलन में कभी भी साथ न थी। आज भाजपा के नेतृत्व में बनी सरकार आदिवासीयों के शोषक खदान मालिक, पूंजीपति, ठेकेदार की सेवा कर रही है। पिछले ६ दशकों में झारखंड़ में विकास के नाम पर आदिवासीयों की 23-5 लाख एकड़ जमीन लूट ली गयी है। इन परियोजनाओं से अनुमानतः 15 लाख आदिवासी बेदखली के शिकार हुए हैं। अगर हाल में किए गये इकरारनामों को जमीन पर उतारा जाए तो अभी भी उतने लोग विस्थापित हो जाएंगे जितने पिछले 60 सालों में हुए।

झारखंड़ में बआदिवासियों की सबसे बड़ी समस्या आज जमीन से बेदखली की है। आदिवासी के लिए जमीन का वही मतलब होता है जो मछली के लिए पानी का होता है। आदिवासी के लिए जमीन उनका इलाका होता है। इसी इलाकों की कल्पना झारखंड़ राज्य के रूप में हुई थी। अगर अधिकांश जमीन आदिवासी के हाथ से निकल गयी तो हमारी आइडेंटीटी ही खतरे में पड़ जाएगी। अभी ही हम अपने इलाके में अल्पसंख्यक हो गये हैं। यही एक विशेष कारण है कि आदिवासी भाषाओं को राज्य का द्वितीय राज्य भाषा का दर्जा नहीं मिल पा रहा है औद्योगीकरण के फलस्वरूप जो गैर झारखंडी लोग बाहार से यहां बड़ी संख्या में आये उनकी भाषाओं को यहां राज्य भाषा बनाया जा रहा है। आदिवासियों की जमीन की सुरक्षा के लिये यहां संतालपरगना काश्तकारी अधिनियम और छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम बनाया गया है लेकिन इस कानून के बावजूद आदिवासियों की जमीन कानून के बावजूद आदिवासियों की जमीन गैरआदिवासियों को हस्तांतरित होती रही। विकास का फायदा आदिवासियों को नहीं मिला। जो अपना पेट भरने के लिए केवल बाहर जाते रहे। कई तरह के शोषण के शिकार होते रहे। जिस झारखंड़ की मांग यहां के आदिवासी करते रहे जिसमें छोटानागपुर, संतालपरगना के अलावा बंगाल के तीन जिला-पुरुलिया, बांकुड़ा और मिदनापुर, मध्यप्रदेश के दो जिले-सरगुजा और रायगढ़ तथा उड़ीसा के चार जिले-सुंदरगढ़, मयूरभंज, क्योंझर और सम्बलपुर शामिल थे, उन्हें नहीं दिया गया। चार राज्यों में आदिवासियों को बांट दिया गया। ऐसी राजनीतिक साजीश रची गयी कि एक लम्बे समय तक उनका शोषण किया जा सके। ये सभी इलाके आपम में सटे हुए हैं और इन सब इलाकों को मिलाकर एक झारखंड़ बनाये बिना किसी भी आदिवासी समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता है। झारखंड़ राज्य बनने के बाद आदिवासी समस्या के समाधान के लिए कुछ भी कारगार कदम नहीं उठाये जा रहे हैं। यहां की सरकार ने झारखंड़ के भावी विकास के लिए विजन 2010 नामक दस्तावेज तैयार किया है। प्रेसर, विरोध के कारण इस विजन को पूरा करने का समय तो गुजर चुका है। लेकिन सरकार की मन्शा अभी तक बदली नही है। वह सबसे ज्यादा जोर उद्योगों के विकास के लिए लगाना चाहता है। इन विकास कार्यों के लिए बड़े पैमाने पर आदिवासियों की जमीन ली जाएगी। यहां की सरकार ने देशी-विदेशी कंपनियों को यहां छूट दे रखी है वे खुद 70 फीसदी जमीन सीधे जमीन मालिकों से खरीद सकती है।

हिंदुओं ने आदिवासियों को राम का भक्त बनाया तो ईसाइयों ने उन्हें ईसु मसीह का अनुयायी। दोनों मतावलंबियों के किये गये धर्मांतरण के कारण आदिवासी की संस्कृति ही बदल गयी। अभी भी थोड़े लोग ऐसे हैं जिन्होंने धर्मांतरण स्वीकार नहीं किया है ऐसे आदिवासियों की संस्कृति को विकास जनित विस्थापन बदलने में कोई कसर नहीं छोड़ेगा। इन बड़ी समस्याओं के आगे आदिवासी समाज में व्याप्त समस्या यथा डायन हत्या, नशाखोरी, अशिक्षा, अंधविश्वास आदि बौने मालूम पड़ते हैं।

कई समस्याएं तो विस्थापन जनित हैं, जैसे शराब। आदिवासी पहले से ही शराब पीते थे और अपने पुरखों को भी पिलाते थे। लेकिन हाल में उसका इस्तेमाल बढ़ गया है। जहां बूढ़े अपनी पुश्तैनी जमीन खोने के गम में शराब पीते हैं वहीं युवा वर्ग को जमीन लेनेवाली कंपनियों के दलाल शराब पिलाकर बर्बाद कर रहे हैं। डायन हत्या भी जमीन से उपजी समस्या है। आदिवासी समाज में पैतृक संपति पर बेटियों को अधिकार नहीं दिया जाता है। जब किसी परिवार में सिर्फ बेटी ही बेटी पैदा हुई और कोई बेटा पैदा नहीं हुआ तो पिता की मृत्यु के बाद उसके रिश्तेदार उस विधवा को यातना देने लगते हैं, और कई बार उसे डायन करार देकर उसकी हत्या कर डालते हैं। इस तरह से उसकी जमीन हड़प ली जाती है। अंधविश्वास के बारे में भी आदिवासियों की खूब आलोचना होती है। विश्व में जितने भी स्थापित धर्म हैं उसको मानने वाले लोग आदि धर्म के धर्मावलम्बियों को अपने देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना करने पर उन्हें यह कहते हैं कि वे भूत-प्रेत की पूजा करते हैं, और जब वे अपने देवी-देवताओं की पूजा करते हैं तो यह माना जाता है कि वे भगवान की पूजा करते हैं। स्थापित धर्म के देवी-देवता को शैतान और अपने देवी-देवता को भगवान कहना-यह दर्शाता है कि हम कितने सभ्य हैं? आदिवासियों में शिक्षा एक अहम् सवाल है। आजादी के बाद आदिवासियों की शिक्षा के लिए करोड़ों रु. पानी की तरह बहाये गये, लेकिन आदिवासियों को क्यों नहीं शिक्षा मिल सकी। इसका एक प्रमुख कारण है आदिवासी क्षेत्रों में गैर आदिवासी शिक्षक का होना शिक्षक हिन्दी में बातचीत करते हैं, जबकि यहां के सभी आदिवासी बच्चे अपनी मातृभाषा बोलते-समझते हैं। शिक्षक की भाषा नहीं समझने और शिक्षक के गाली-गलौज की वजह से बच्चे स्कूल छोड़ना ही मुनासीब समझते हैं, जबकी बच्चों को उनकी मातृभाषा में पढ़ाये जाने का संवैधानिक प्रावधान है। इन्हीं कुछ वजहों से बाहर के लोग यह भ्रम पालकर रखते हैं कि आदिवासी समाज बहुत पिछड़ा हुआ समाज है। वे आर्थिक रूप से पिछड़े हुए जरूर हो सकते हैं, लेकिन सांस्कृतिक रूप से पिछड़ा हुआ कहना एक खास अवधारणा की देन है।

आदिवासी प्रकृति के साथ सु-संगत और सहजीवी संबंध बनाकर रखते हैं। उनकी अर्थव्यवस्था रक्षणमूलक और सामूहिकता पर आधारित अर्थव्यवस्था है। दूसरे समाज की अपेक्षा आदिवासी समाज में स्त्री-पुरुषों के संबंध में समानता है। यह सहभागी लोकतंत्र पर आधारित समाज है। आदिवासी संस्कृति प्रकृति के लय में शामिल उसका अभिन्न अंग है। गांव का अखड़ा में नाच-गान की सामूहिक अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है। अखड़ा में कोई दर्शक नहीं होता। मुख्यधारा समाज में नचनी का नाच होता है और समाज के अन्दर सामंजस्य पर जोर देता है जबकि सभी स्थापित धर्म व्यक्तिगत मुक्ति पर जोर देते हैं। आदिवासी दर्शन की बात करें तो हम पायेंगें कि जिंदगी केवल काम करने के लिए नहीं है, बल्कि यह आराम करने और आनंद मनाने के लिए है। आदिवासियों के पुरखे यह कह गये कि अधिक काम करना बुरा है, क्योंकि अगर वे ज्यादा समय तक हल चलायेंगे तो बैलों का उत्पीड़न होता है। पुरखों ने बताया कि हमें उतना ही परिश्रम करना चाहिए जितना आजीविका के लिए आवश्यक है। इसलिए आदिवासी धन का संचय नहीं करते, यही आदिवासियों की समझ है। मुझे लगता है कि बहुत कुछ मुख्यधारा की सोसायटी के मुकाबले अधिक मानवीय है। मुख्यधारा की समाज में संचय करने की प्रकृति के कारण ही देश में आज भ्रष्टाचार बढ़ा है। आदिवासियों में भी भ्रष्टाचार बढ़ा है लेकिन इसे उन्होंने मुख्यधारा के समाज से ही सीखा है। आदिवासी शब्दकोश में धनी और निर्धन के लिए कोई शब्द नहीं है। बलात्कार के लिए कोई शब्द ही नहीं है। उसी तरह पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक के लिए भी शब्द नहीं हैं। आदिवासी समाज में जाति प्रथा नहीं मिलेगी। गांव के मुंडा (प्रधान), पाहन (पुजारी) और पड़हा राजा सभी गांव के अन्य लोगों के साथ जमीन पर साथ बैठते हैं। उनमें बराबरी की चेतना इतनी प्रबल है कि नौकर के साथ भी बैठकर खाना खाते हैं।

इन सब के बावजूद आदिवासी समाज जैसे-जैसे मुख्यधारा में शामिल हो रहा है उसके जीवन, समाज और संस्कृति में भी बदलाव आ रहा है। आज आदिवासी समाज और परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व चुनौती बनकर खड़ा है। इसलिए किस चीज को छोड़ना है और किसे नहीं। इस पर आदिवासी समाज को गहराई से विचार करना चाहिए, इसी में आदिवासी समाज की भलाई है।

❑❑

अखड़ा
शास्त्री नगर,
कांके रोड
रांची